प्रस्तावना

जिस समय से हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आविर्भाव माना जाता है, ठीक वही समय हिंदी की पत्रकारिता की शुरूआत का भी है। दूसरे शब्दों में कहें तो, हिंदी साहित्य में आधुनिक चेतना के आविर्भाव और हिंदी पत्रकारिता का आरंभ एक साथ एवं एकदूसरे के समानांतर ही हुआ है। यदि ध्यान दिया जाए तो स्पष्ट होगा कि, आधुनिक जीवन-मूल्य और उसकी चेतना को तीव्रतर करने तथा उसे विस्तृत फलक देने में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसीलिए हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल की शुरूआत की जब कभी भी पड़ताल की जाती है, उसमें पत्र-पत्रिकाओं के अवदान को अवश्य ही रेखांकित किया जाता है।

पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के साहित्य के विकास में जो सबसे क्रांतिकारी परिवर्तन किया, वह है साहित्य को कुलीनतावादी और सामंतवादी कटघरे से बाहर निकालना। इस प्रकार, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने साहित्य के पाठक-वर्ग को ही बदल देने का कार्य किया। अब साहित्य किसी एकांत साधना अथवा राजदरबार के शिष्ट समुदाय तक सीमित रहनेवाली कोई चीज नहीं था, बल्कि उसका संबंध व्यापक जनसमुदाय से हो गया। पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्य को अगणित जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य किया। अब आधुनिक काल में आकर साहित्य का सवाल जनसाधारण का सवाल बनकर उभरा। कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य को कुलीनतावादी एवं सामंतवाद के संकीर्ण दायरे से बाहर निकालने की प्रक्रिया स्वयं आधुनिक चेतना और उसके परिवर्तनकारी मूल्यों की प्रतीति कराता है। ठीक इसी प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य को व्यापक जनसमूह से जोड़ने की प्रक्रिया और उसे जनमानस की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना लोकतांत्रिक मूल्यों की अवस्थिति का ही बोध कराता है। साहित्य के व्यापक जनसमुदाय से जुड़ते ही उसके लक्ष्य, उसके निहितार्थ एवं उसके सीमा-विस्तार में तुरंत ही बदलाव परिलक्षित किया जा

सकता है। साहित्य का रूप भी वही नहीं रह जाता, जो कभी पूर्व में था। वहाँ भी साहित्य-रूपों में नवीनता का आग्रह स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। व्यापक जनसमूह जब अपनी विचार-अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है तो वहाँ साहित्य-रूपों में न केवल बदलाव परिलक्षित किया जा सकता है, बल्कि अभिव्यक्ति के नवीन-रूपों का आविर्भाव भी देखने को मिलता है। यही कारण है कि हिंदी साहित्य के विकास के आधुनिक काल में अभिव्यक्ति के वैविध्यपूर्ण रूप और नवीन-से-नवीन विधाओं को परिलक्षित किया जा सकता है। साहित्य के इन वैविध्यपूर्ण रूप और नवीन-से-नवीन विधाओं को जन्म देने और किसी विधा को विकसित करने में पत्र-पत्रिकाओं की अत्यंत उल्लेखनीय और निर्णायक भूमिका रही है। आधुनिक चेतना और उसकी वाहक पत्र-पत्रिकाओं ने यह बोध कराया कि हम अपनी अभिव्यक्ति किसी निश्चित नियमों से बद्ध साहित्य-रूप अथवा विधा में ही करने के लिए बाध्य नहीं हैं; हमें जीवन के व्यापक पक्ष को स्पष्ट करने के लिए सदैव 'महाकाव्य' की सर्गबद्ध ढाँचे की ज़रूरत नहीं है, हम उसे किसी 'उपन्यास' का रूप दे सकते हैं, उसे किसी 'लंबी कहानी' अथवा किसी 'कहानी' के संश्लिष्ट रूप में भी अभिव्यक्ति दे सकते हैं। हम अपनी बात सिर्फ 'पद्य' में ही नहीं, अपितु 'गद्य' में भी कह सकते हैं। वस्तुतः यह हमारी चेतना का आधुनिकीकरण और जनतंत्रीकरण की प्रक्रिया से होकर गुजरना है।

स्पष्ट है कि, साहित्य की विभिन्न विधाओं और अभिव्यक्ति के विविध रूपों के उद्‌भव और विकास में पत्र-पत्रिकाओं का अन्यतम योगदान है। हिंदी में प्रकाशित 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'ब्राह्मण', 'हिंदी प्रदीप', 'सरस्वती', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'हंस', 'प्रभा', 'मतवाला', 'नया साहित्य', 'कल्पना', 'धर्मयुग', 'आलोचना', 'सारिका', 'पूर्वग्रह', 'समालोचक' आदि जैसी पत्र-पत्रिकाओं का हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं के आविर्भाव और उनके विकास में अन्यतम योगदान है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक हिंदी गद्य की विविध विधाओं जैसे 'कहानी',

'निबंध', 'जीवनी' तथा साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति हिंदी में आलोचना का प्रारंभ भी पहले-पहल पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ। आधुनिक चेतना एवं लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया की यदि कोई सर्वोत्तम देन है तो वह आलोचना जैसा साहित्यिक गद्य रूप ही है। वास्तव में, आलोचना जैसे गद्य रूप का उद्भव लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया के साथ होता है, और उसका विकास हिंदी भाषी समाज में विकसित हो रहे लोकतंत्र की सांस्कृतिक प्रक्रिया के समानांतर भी रखकर देखा जा सकता है। क्योंकि वस्तुतः आलोचना स्वयं एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है।

ग़ौरतलब है कि हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में रचनात्मक साहित्य और उसकी विविध विधाओं पर केंद्रित पत्रिकाएँ तो बहुत रही हैं, किंतु शुद्ध आलोचना के क्षेत्र की पत्रिकाओं का प्रायः अभाव रहा है। यह अभाव हमें 1950 ई. तक की हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। सन् 1951 ई. से 'आलोचना' त्रैमासिक के प्रकाशन से पूर्व हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में विशुद्ध आलोचना की कोई पत्रिका ही नहीं थी। यही कारण है कि हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में, विशेषकर हिंदी आलोचना के क्षेत्र में 'आलोचना' पत्रिका के संपादन-प्रकाशन का ऐतिहासिक महत्त्व है। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में 'आलोचना' पत्रिका के प्रकाशन को छोटाराम कुम्हार 'एक युगांतरकारी घटना' के रूप में देखते हैं।

'आलोचना' पत्रिका 'राजकमल प्रकाशन-नई दिल्ली' जैसे प्रकाशन संस्थान से प्रकाशित होती रही है। 'आलोचना' पत्रिका का प्रवेशांक श्री शिवदान सिंह चौहान के संपादन में अक्टूबर, 1951ई. में प्रकाशित हुआ। इस प्रकार शिवदान सिंह चौहान इस पत्रिका के संस्थापक-संपादक हुए। शिवदान सिंह चौहान के उपरांत इसके संपादन का दायित्व कई संपादकों के हाथों में आया। शिवदान सिंह चौहान के बाद अप्रैल, 1953ई. से धर्मवीर भारती, रघुवंश, ब्रजेश्वर वर्मा और विजयदेवनारायण साही ने संयुक्त रूप से एक संपादक-मंडल के रूपमें इसका संपादन किया। इसकी संपादन-व्यवस्था में अप्रैल, 1956 ई0 में फेरबदल किया गया, अब 'आलोचना' का संपादन

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के हाथों में आया। इसी तरह 'आलोचना' का संपादन-दायित्व में पुनः फेरबदल हुआ और शिवदान सिंह चौहान 'आलोचना' के फिर से संपादक बनाए गए। इस बीच 'आलोचना' का प्रकाशन कई बार बाधित हुआ, और वह बाधित होकर भी प्रकाशित होती रही। सन् 1967 ई0 से 'आलोचना' पत्रिका का संपादन-दायित्व नामवर सिंह के हाथों में आया। इस प्रकार, 'आलोचना' पत्रिका अपने प्रकाशन से नामवर सिंह के हाथों में आने तक कई संपादकीय विवेकों से होकर गुजरी, कई संपादकीय जगत के उलटफेर उसने देखे, कई बार बीच-बीच में उसका प्रकाशन बाधित हुआ।

'आलोचना' का संपादन-दायित्व जब से नामवर सिंह के हाथों में आया इस संपादकीय उलटफेर से उसे मुक्ति मिली। यानी नामवर सिंह के संपादन में 'आलोचना' सन् 1967 से सन् 1990 ई0 तक की दीर्घ-अवधि तक संपादित-प्रकाशित होती रही। उसे प्रकाशन की बाधा से भी मुक्ति मिली। 'आलोचना' जैसी सहित्यिक विधा पर केंद्रित एक पत्रिका का लगभग चौबीस वर्षों तक निरंतर एक संपादक द्वारा संपादन, हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में वास्तव में युगांतरकारी घटना है। इसका निरंतर प्रकाशन ही महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है, बल्कि इस दीर्घ अवधि में हिंदी के साहित्यिक पटल पर उसकी सक्रिय उपस्थिति रही है। नामवर सिंह स्वयं हिंदी आलोचना के प्रमुख स्तंभ हैं, उनके संपादन में इतने वर्षों तक 'आलोचना' के प्रकाशन ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में अवश्य ही कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य किए होंगे, जिससे हिंदी आलोचना की दिशा को परिवर्तित करने का सुयोग बना होगा; ज़रूर ही उसने कुछ ऐसे कार्य भी किए होंगे, जिससे हिंदी आलोचना के भविष्य का निर्धारण हो सकेगा। यदि उसने चौबीस वर्षों तक के अपने प्रकाशन की निरंतरता में ऐसा कुछ भी नहीं किया है, तो उसके प्रकाशन का कोई औचित्य नहीं ठहरता। किंतु ऐसा नहीं है। नामवर सिंह के संपादन में 'आलोचना' पत्रिका की चौबीस वर्षों तक सक्रिय उपस्थिति ही यह स्पष्ट कर देती है कि उसका हिंदी आलोचना में कुछ विशेष उल्लेखनीय योगदान है। नामवर सिंह

संपादित 'आलोचना' पत्रिका का हिंदी आलोचना में वह विशेष उल्लेखनीय अवदान क्या है, एक गंभीर शोध-कार्य का विषय है। 'हिंदी आलोचना के विकास में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का योगदान' क्या रहा है, इस विषय पर एक शोधपूर्ण अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (भारत) से शोध-उपाधि की प्राप्ति हेतु 'हिंदी आलोचना के विकास में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का योगदान' विषय पर हिंदी विभाग में शोध-कार्य की रूपरेखा प्रस्तावित की गई, और यह शोध-कार्य उसी आवश्यकता का परिणाम है, जो 'शोध-प्रबंध' के रूप में अपना आकार ग्रहण कर सका है।

मेरी सीमित जानकारी में 'आलोचना' पत्रिका पर दो शोध-कार्य हुए हैं, जो यहाँ उल्लेखनीय हैं। एक शोध-कार्य हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ से स्नातकोत्तर 1990-91 ई0 (एम. ए.) हिंदी साहित्य की उपाधि हेतु 'नवें दशक की 'आलोचना' पत्रिका और हिंदी समीक्षा' विषय पर 'हुमा परवीन' द्वारा लघु शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह लघु-शोध प्रबंध डॉ0 रमेशचंद्र शर्मा के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया है। इस शोध-कार्य का शीर्षक ही इस विषय के सीमा-क्षेत्र को स्पष्ट कर देता है। शोध-कार्य में 1980 से 1990 ई0 तक ही प्रकाशित 'आलोचना' पत्रिका के अंकों की विविध सामग्री का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उसके लेखों के सार का संक्षेप में परिचय दिया गया है। यद्यपि बीच-बीच में उसका महत्त्व भी हिंदी समीक्षा के अंतर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, फिर भी उसका अधिकांश रूप सर्वेक्षणात्मक और विवरणात्मक परिचय तक सीमित है। 'आलोचना' पत्रिका को लेकर दूसरा महत्त्वपूर्ण शोधकार्य छोटाराम कुम्हार ने 'जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के माध्यम से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त 'लघु शोध परियोजना' की अनुदान-राशि से सम्पन्न किया है। इन्होंने अपनी शोध परियोजना में सन् 1951 ई0 से लेकर 1990 ई0 के सभी संपादकों के संपादन में प्रकाशित संपूर्ण 'आलोचना' पत्रिका के अंकों के लेखों का सर्वेक्षण करते हुए

'आलोचना-कोश' प्रस्तुत किया है। उनके इस शोध-कार्य का लक्ष्य 'आलोचना' पत्रिका के संपादक और अंकों का लेखा-जोखा बताना है। इसके उपरांत उसका सर्वेक्षणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए 'आलोचना' पत्रिका के संपूर्ण अंकों के लेख आदि का एक कोश-निर्माण करना है। उनके इस शोध-कार्य का लक्ष्य हिंदी आलोचना के विकास में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का क्या योगदान है, यह बताना नहीं है बल्कि उनका शोधकार्य' 'आलोचना' पत्रिका का सर्वेक्षण और मूल्यांकन' विषय पर केंद्रित है। जो 'आलोचना-संदर्भ कोश' (1995 ई0) शीर्षक से पुस्तक रूप में राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर से प्रकाशित है। स्पष्ट है कि मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध-कार्य में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का हिंदी आलोचना के विकास में दिए गए योगदान को स्पष्ट करना रहा है। छोटाराम कुम्हार जी की पुस्तक में 'आलोचना' के संपादकों के संपादन काल को विभिन्न चरणों में बाँट कर देखा गया है। यहाँ उन्हीं विभिन्न चरणों को ही अध्ययन की सुविधा के लिए स्वीकार किया गया है। 'आलोचना' पत्रिका पर हुए उपर्युक्त शोध-कार्यों के अतिरिक्त कोई अन्य शोध-कार्य मेरी सीमित जानकारी में देखने में नहीं आया है। इन शोध-कार्यों की प्रकृति भी मेरे शोध-कार्य की प्रकृति से भिन्न है। इस अध्ययन में यह बताने का प्रयास किया गया है कि नामवर सिंह के संपादन में 'आलोचना' पत्रिका ने हिंदी आलोचना के स्वरूप को परिवर्तित करने मे किस भूमिका का निर्वाह किया है। उसके पूर्व हिंदी आलोचना का रूप कैसा था? नामवर सिंह ने अपने संपादकीय विवेक के माध्यम से ऐसा क्या परिवर्तन किया, जिसका हिंदी आलोचना के विकास में अन्यतम महत्त्व है। इसके अतिरिक्त हिंदी आलोचना की नवीन प्रवृत्तियाँ क्या रही हैं जिससे हिंदी आलोचना अपने स्वरूप का विकास कर सकी, नामवर सिंह ने 'आलोचना' का संपादन करते हुए उन्हें किस रूप में ग्रहण किया और उन्हें 'आलोचना' में किस प्रकार से प्रस्तुत किया गया, जो हिंदी आलोचना को कहीं बहुत गहरे प्रभावित करती रहीं और उन्हीं से उसके विकास की धाराएँ निकल कर आईं। नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' अपने पूर्ववर्ती संपादकों से किस प्रकार भिन्न रही,

तथा 'आलोचना' पत्रिका की वह वैचारिक पृष्ठभूमि क्या रही है, जिसके कारण नामवर सिंह चौबीस वर्ष तक इसका संपादन करते रहे, और हिंदी जगत में गूढ़ सामग्री युक्त पत्रिका की सक्रिय उपस्थिति बनी रही?? वस्तुतः हिंदी आलोचना के विकास में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' त्रैमासिक का योगदान किस रूप में रहा है, यही इस शोध कार्य में दिखलाने का प्रयास किया गया है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि, प्रस्तुत शोध-कार्य अपनी अध्ययन की पद्धति और विषय की प्रकृति में पहला और मौलिक कार्य है। नामवर सिंह के प्रधान संपादकत्व में निकलने वाली 'आलोचना'सहस्त्राब्दी के अंक इस शोध-कार्य की सीमा के अंतर्गत नहीं आते हैं, इसलिए उनका उपयोग इस शोध-कार्य में नहीं किया गया है।

प्रस्तुत विषय पर शोध-कार्य करने हेतु इस अध्ययन को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। यह विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए ही नहीं है, बल्कि यह विभाजन शोध-कार्य की प्रकृति और आवश्यकता के अनुरूप भी है। आवश्यकतावश इन अध्यायों को उपशीर्षकों में बाँट कर भी देखा गया है।

इस शोध-कार्य के अध्याय एक'नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' में प्रस्तुत प्रमुख साहित्यिक बहसें और मुद्दे', में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि साहित्यिक बहसों की साहित्य के विकास में क्या भूमिका होती है? साहित्यिक बहसों को चलाने में पत्र-पत्रिकाओं की किस प्रकार की निर्णायक भूमिका होती है। इस पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया गया है, उन साहित्यिक बहसों से 'आलोचना' का विकास किस रूप में होता है। इन्हीं संदर्भों में 'आलोचना' पत्रिका की प्रमुख साहित्यिक बहसों को ही इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। अन्य अवांतर साहित्यिक बहसें जो 'आलोचना' पत्रिका में बहुत दूर तक नहीं चली हैं उन्हें विस्तार भय से शोध-प्रबंध की सीमा के कारण उनका संकेत भर किया गया है। इस अध्याय से स्पष्ट होगा कि साहित्यिक बहसों का हिंदी आलोचना के विकास में कितना अन्यतम योगदान है और नामवर सिंह

ने अपने संपादकीय विवेक से उसे कितनी सतर्कता और सजग होकर प्रस्तुत कर सकें हैं।

द्वितीय अध्याय जिसका शीर्षक 'मार्क्सवादी आलोचना की नई बहसें और 'आलोचना' पत्रिका', है। इस अध्याय मे नामवर सिंह के संपादन में मार्क्सवादी आलोचना की नवीन बहसों को किस प्रकार प्रस्तुत किया है, और उन नई बहसों की तत्कालीन साहित्यिक परिवेश में क्या आवश्यकता रही है? और हिंदी आलोचना के विकास में उनका क्या महत्त्व रहा है इन्हींप्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया गया है।

'परंपरा का मूल्यांकन और 'आलोचना' पत्रिका' इस शोध प्रबंध में तृतीय अध्याय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परंपरा का मूल्यांकन हिंदी आलोचना की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों में से एक है। हिंदी आलोचना में परंपरा के मूल्यांकन के कई रूप देखने को मिलते हैं। नामवर सिंह के लिए परंपरा का मूल्यांकन का क्या अर्थ है, उन्होंने उसे 'आलोचना' पत्रिका में किस प्रकार समायोजित किया है, इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। परंपरा के मूल्यांकन की प्रवृत्ति के उस रूप से हिंदी आलोचना को क्या दिशा मिली है, इसे भी यहाँ देखा जा सकता है। परंपरा के मूल्यांकन के संदर्भ में हीं 'दूसरी परंपरा की खोज' के प्रश्न, और साहित्य की परंपरा में कैनन निर्माण के सवाल को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय यहाँ 'समकालीन रचनाशीलता और 'आलोचना' पत्रिका शीर्षक से देखा जा सकता है। समकालीन रचनाशीलता से टकराहट और उससे सक्रिय संवाद ही आलोचना को आलोचना बनाता है। इस अध्याय में आलोचना की इस प्रवृति को स्पष्ट लक्षित किया जा सकता हैं। 'आलोचना' के माध्यम से नामवर सिंह समकालीन रचनाशीलता से किस प्रकार सक्रिय संवाद करते रहे? आलोचना के प्रकाशन के समानांतर चलनेवाली समकालीन कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना आदि की स्थिति क्या रही है, और 'आलोचना' पत्रिका में उसे किस रूप में प्रस्तुत किया गया हैइस अध्याय में विस्तार से विवेचित विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध-कार्य के पाँचवें अध्याय'आलोचना के विशेषांकः महत्त्व और वैशिष्ट्य' में नामवर सिंह ने किन रचनाकारों, विषयों और विधाओं पर विशेषांक आयोजित किए हैं, अथवा किस रचनाकारों पर स्मृति अंक, विशेष सामग्री आदि का प्रकाशन किया और उनका हिंदी आलोचना में क्या मह त्त्व है? इन्हीं प्रश्नों पर केंद्रित होकर इस अध्याय में विचार प्रस्तुत किया गया है।

'नामवर सिंह का संपादकीय विवेक और 'आलोचना' का संपादन' शीर्षक छठे अध्याय में नामवर सिंह के संपादकीय विवेक की महत्ता की पड़ताल की गई है, और उससे 'आलोचना' पत्रिका किस रूप में अपना आकार ग्रहण करती रही एवं उसका हिंदी आलोचना में क्या महत्त्व है, इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सातवाँ अध्याय जो कि इस शोध-कार्य का ही शीर्षक है. यानी 'हिंदी आलोचना के विकास में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का योगदान' में हिंदी आलोचना में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' के संपूर्ण अवदान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। छः अध्यायों में तो अवदान को विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस अध्याय में छः अध्यायों में आए महत्त्वपूर्ण मुद्दों के अतिरिक्त उन तथ्यों को प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है, जो इन अध्यायों में नहीं आ सके हैं, किंतु वे तथ्य 'आलोचना' पत्रिका के हिंदी आलोचना में अन्यतम योगदान को स्पष्ट कर सके है, इसी लिए इस अध्याय में उसे समग्रता से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

'उपसंहार' इस प्रबंध में उपसंहार के रूप में ही है यानी शोध-कार्य की समाप्ति पर अपने निष्कर्षों को स्पष्ट किया गया है। उपसंहार निष्कर्ष के रूप में ही प्रस्तुत हैं, इसलिए इसमें पूर्व की कही हुई बातों का दुहराव भी देखा जा सकता है। अंत में, संदर्भ ग्रंथ की सूची भी प्रस्तुत की गई। जिससे शोध-कार्य की वस्तुनिष्ठता और आवश्यकता की पूर्ति की जा सके।

इस शोध-कार्य में कुछ पक्षों पर ध्यान नहीं दिया जा सका है, जिसे इस अध्ययन की सीमा के रूप में ही देखा जाना चाहिए। इस अध्ययन में नामवर सिंह से पूर्व 'आलोचना' के संपादकों

की संपादन-कला आदि पर अलग से व्यवस्थित कोई अध्याय नहीं है, बल्कि आवश्यकतानुरूप अलग-अलग अध्यायों में उनकी चर्चा तभी आई है, जब नामवर सिंह की संपादन-कला से उनमें संपादकों में भिन्नता स्पष्ट करना ध्येय रहा है।

इसके अतिरिक्त, यहाँ सूचित करना अत्यावश्यक है कि नामवर सिंह ने 'आलोचना' का संपादन करते हुए तीन सहयोगियों की सहायता ली थी। जिनमें विष्णु खरेजिनका नाम पत्रिका पर सह-संपादक के रूप में प्रकाशित नहीं हुआ था। दो अन्य सहयोगियों के रूप में 'नंदकिशोर नवल' और परमानंद श्रीवास्तव का नाम 'आलोचना' के पृष्ठों पर 'सह-संपादक' के रूप में प्रकाशित होता था। यह सह-संपादक अलग-अलग समय में 'आलोचना' के संपादन से जुड़े। इनकी 'आलोचना' पत्रिका के संपादन में उल्लेखनीय भूमिका रही है. किंतु इस शोध-कार्य में इन सह-संपादकों की क्या भूमिका रही है, और योगदान रहा है, इस पर विचार नहीं किया गया है।

इसी प्रकार से राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली में प्रबंधकीय अथवा व्यवस्थापकीय फेरबदल पर, या व्यवस्थापक और संपादक के बीच के निजी प्रसंगों और आपसी कलह पर प्रायः ध्यान नहीं दिया गया है। यहाँ 'आलोचना' पत्रिका और संपादकीय विवेक का हिंदी आलोचना के विकास में क्या अवदान है। मूल सामग्री और तथ्यों के धरातल पर ही कोई बात कहने का प्रयत्न किया गया है।

इस शोध-कार्य की एक सीमा और रही है, वह यह कि 'आलोचना' में प्रकाशित 'पुस्तक-समीक्षाओं' पर प्रायः सर्वेक्षणात्मक या मोटी बातों को ही स्पष्ट किया गया है। इस पर अत्यंत गंभीरता से विचार नहीं किया गया है। जबकि इस पर अलग से कार्य करने की संभावना बनी हुई है। हिंदी 'आलोचना' में पुस्तक-समीक्षाओं की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, किंतु इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। 'आलोचना' पत्रिका का अत्यंत महत्त्वपूर्ण हिस्सा पुस्तक समीक्षाओं का है, इसलिए इस पर एक लघु शोध-कार्य की आवश्यकता बनी हुई है। इसके

अतिरिक्त, हिंदी कविता के विकास में 'आलोचना' पत्रिका में प्रकाशित कविताओं की भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है, इस विषय पर भी शोध-कार्य करने की आवश्यकता बनी हुई है। इसके अतिरिक्त, 'आलोचना' संपादन में सहयोगी की भूमिका का निर्वाह कर रहे विद्वानों का उसके संपादन में क्या महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है इस पर भी शोध-कार्य किया जा सकता है।

इस शोध-कार्य में शोध की कई अध्ययन पद्धतियों का आवश्यकतानुरूप प्रयोग किया गया है। यहाँ ऐतिहासिक, तुलनात्मक के साथ निगमनात्मक और आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग भी किया गया है। तथ्यों के आधार पर इस शोध-प्रबंध में ही कोई निष्कर्ष निकाला गया है संदर्भ-सूचनाओं की मानक प्रस्तुति के लिए 'एम. एल. ए. हैंडबुक फॉर राइटर्स ऑफ रिसर्च पेपर (सातवॉ संस्करण)' भारतीय शोधार्थियों वाला, नई दिल्ली, के दिशा-निर्देश को ही आधार रूप में स्वीकार किया गया है, जहाँ कुछ भिन्नता अपनाई गई. उसकी जानकारी संक्षेप और संकेत-चिह्न सूची तथा अन्य सूचनाएँ शीर्षक पृष्ठ पर उल्लिखित हैं।

इस शोध-कार्य में सबसे अधिक कठिनाई का सामना 'आलोचना' पत्रिका के संपूर्ण अंकों को प्राप्त करने में ही हुआ। यह विडंबना ही है, कि राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली जहाँ से 'आलोचना' पत्रिका प्रकाशित होती थी, तथा उसके वितरण और व्यवस्था आदि करने का पूरा दायित्व राजकमल प्रकाशन का था, उन्हीं के पास आज 'आलोचना' का कोई अंक उपलब्ध नहीं है। इसलिए 'आलोचना' पत्रिका की प्रतियाँ प्राप्त करने में सबसे अधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। 'आलोचना' की प्रतियाँ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के 'मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी', बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय की सेंट्रल लाइब्रेरी के साथ प्रो0 प्रदीप सक्सेना (हिंदी विभाग, अ. मु. वि. अलीगढ़) डॉ0 रमेश कुमार (हिंदी विभाग, वार्ष्णेय कॉलेज, अलीगढ़) की निजी पुस्तकालय से प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त 'आलोचना' पत्रिका पर छोटाराम कुम्हार के शोधकार्य की प्रकाशित पुस्तक की प्रति प्रो. भरत सिंह (हिंदी विभाग, अ.मु.वि, अलीगढ़)

से प्राप्त हुई है। इस शोध-कार्य में अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने में मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी की सर्वाधिक उल्लेखनीय भूमिका रही है। मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी के बाद प्रो0 प्रदीप सक्सेना सर की निजी पुस्तकालय से ढेर सारी अध्ययन-सामग्री प्राप्त हुई हैं। अतः मैं उपर्युक्त संस्थानों के पुस्तकालय और निजी पुस्तकालयों का, शोध-कार्य संबंधी सामग्री उपलब्ध कराने के लिए, उनका आभारी हूँ। मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी के हिंदी सेक्शन के इंचार्ज पीर भाई, नदीम भाई और हिंदी सेमिनार पुस्तकालय के इंचार्ज सैयद मुहम्मद माज़ भाई ने शोध संबंधी पुस्तकें उपलब्ध कराने में उल्लेखनीय सहयोग दिया है, अतः आप सभी के प्रति आभार प्रकट करना चाहता हूँ। पीर भाई के बारे में प्रसिद्ध है कि हिंदी-संस्कृत की किसी भी पुस्तक का नाम बताइए और वह लाइब्रेरी में जहाँ कहीं भी होगी, वह आप को अवश्य मिलेगी, इसलिए वह यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पीर भाई जैसे समर्थ लोग ही किसी पुस्तक के ढेर को लाइब्रेरी का रूप देते हैं।

इस शोध-कार्य के लिए मुझे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली (भारत) द्वारा जूनियर रिसर्च फेलोसिप (जे.आर.एफ.) के रूप में आर्थिक सहायता मिली अतः मैं इस संस्था का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिसके आर्थिक सहयोग से यह शोध कार्य बिना बाधा के सुचारु रूप से पूर्ण हो सका।

इस शोध-कार्य के दौरान मुझे मेरे स्वर्गीय दादा-दादी के संघर्षपूर्ण जीवन से बराबर प्रेरणा मिलती रही है, उन्हीं की प्रेरणा से शोध-कार्य करने का मन बना, इसलिए यह शोध-कार्य मेरे स्वर्गीय दादा-दादी को ही समर्पित है। मेरे अब्बा और अम्मी से तो मेरा अस्तित्व है। उनका वात्सल्य से परिपूर्ण भाव और त्याग, कई स्तरों पर साये की तरह निरंतर मेरी सहायता करता रहता है। बड़े-अब्बू-बड़ी अम्मी, नन्हें अब्बू-नन्हीं अम्मी और छोटी फूफी का प्यार भी मुझे बराबर मिलता रहा है। इस शोध-कार्य के दौरान बड़े भाई अफरोज आलम, और बड़ी भाभी, आफरीन बाजी, इमदाद भाईजान, फिरोज भाई, छोटी भाभी, जुनैद और अज़हर के स्नेह ने मेरी हौसलाअफ़ज़ाई की और ये

सभी प्रेम और आदर के पात्र हैं। छोटे भाई-बहनों के आत्मीय लगाव ने मुझे निरंतर आत्मबल प्रदान किया। इस शोध-कार्य के दौरान मुझे मेरे पुराने मित्रों, सहपाठियों और कुछ नए मित्रों का निरंतर सहयोग मिलता रहा, जिन्होंने मेरी हरसंभव मदद की, हर परेशानी में मेरे साथ खड़े रहे; सुख में कम दुख में ज़्यादा रहे। मैं उनके प्रति आजीवन ऋणी रहूँगा और अपने को कृतज्ञ मानता हूँ। इस शोध-कार्य के दौरान हिंदी विभाग का और उसके आफिस-स्टाफपरवेज़ फातिमा बाजी, सलमान भाई और शकील भाई और वहाब भाई का निरंतर सहयोग मिलता रहा, मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

मैं हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो0 आरिफ़ नज़ीर सर का विशेष रूप से आभार प्रकट करता हूँ, जिनके आशीर्वाद से ही इस शोध-प्रबंध को विभाग में प्रस्तुत किया जा सका है।

इस शोध-कार्य के दौरान प्रो0 एम. ई. जुबेरी, प्रो0 भरत सिंह, प्रो0 अब्दुल अलीम, प्रो0 रमेश रावत, प्रो0 आशिक़ अली, श्री अजय बिसारिया, डॉ0 राजीवलोचन नाथ शुक्ल, डॉ0 वेद प्रकाश, डॉ0 शंभुनाथ तिवारी, डॉ0 इफ़्फत असग़र, डॉ0 तस्नीम सुहैल, डॉ0 रेशमा बेग़म, डॉ0 मेराज अहमद जैसे विद्वान गुरुजनों का सहयोग, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से, मिलता रहा है इनके प्रति मैं सदा ऋणी रहूँगा।

मैं डॉ0 आशुतोष कुमार का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ. जिन्होंने विषय-चयन से लेकर अपने निर्देशन में इस कार्य से मुझे जोड़ा। उनके निर्देशन में इस विषय पर कार्य करने के लिए मैं जुड़ा ही था कि उनको दिल्ली विश्वविद्यालय ज्वाइन करना पड़ा। इस शोध-कार्य को वह स्वयं पूरा कराना चाहते थे. किंतु दिल्ली विश्वविद्यालय जाने के बाद यह संभव नहीं था। उनसे और वंदना भाभी से मुझे सदैव स्नेह मिला। शोध-निर्देशक की अनुपलब्धता के कारण मुझे कई विभागीय और प्रशासनिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। विभागीय और प्रशासनिक और पारिवारिक कठिनाईयों के चलते लगभग एक वर्ष तक इस विषय पर मैं कुछ नहीं कर सका। प्रो0 प्रदीप सक्सेना सर ने मुझे अपने निर्देशन में लेकर इस संकट से उबारा। इस विषय को विधिवत निर्बाध

गति दी। अपनी महत्तर गुरुता का परिचय देते हुए मुझे अपनाया; अपना बना लिया। उनके बहुविध ज्ञान और आलोचकीय प्रतिभा युक्त निर्देशन ने इस विषय को समझने में और मेरी पारिवारिक कठिनाईयों में भी हर संभव सहायता की। मेरी हर प्रकार से मदद की। हिंदी आलोचना की साहित्यिक बहसों से लेकर मार्क्सवादी आलोचना की नई पुरानी बहसें, साहित्य की परंपराएँ क्या होती हैं परंपरा के मूल्यांकन के प्रति क्या दृष्टिकोण हो, तथा समकालीन रचनाशीलता को किस प्रकार समझा जाए, फिर उसमें पत्रिका का संपादन और उसके संपादक का क्या महत्त्व है, इन सबके प्रति कौन-सी अध्ययन-पद्धति और कार्य-प्रणाली अपनाई जाए, इन सबकी जानकारी मुझे उन्हीं से प्राप्त हुई है, उन्हीं निर्देशों और पद्धतियों का उपयोग इस प्रबंध के प्रत्येक अध्याय में किया गया है। इस अध्ययन में जितनी भी त्रूटियाँ हैं, वह मेरी सीमाएँ हैं। इस अध्ययन में जो कुछ भी अच्छा है, उसका श्रेय मेरे शोध-निर्देशक को जाता है। उनके प्रति आभार, धन्यवाद आदि शब्द का प्रयोग कर उनकी 'महत्तर गुरुता' का अपमान नहीं कर सकता। अंत में यही कहूँगा कि, उनके अप्रतिम सहयोग के बिना यह शोध-कार्य मैं कभी पूरा नहीं कर पाता।

इस शोध-प्रबंध की टाइपिंग और कंपोजिंग में श्री बिसारत अली ने कष्ट-साध्य श्रम किया है। अतः हम उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

10-01-2014.

(जावेद आलम)